के.एन. गोविंदन कुट्टी मेनन

बनाम

सी.डी. शाजी

(सिविल अपील संख्या 10209 2011)

28 नवंबर 2011

[पी. सदाशिवम और जे. चेलमेश्वर, जे.जे.]

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 - एस. 21 - की व्याख्या - जब एक आपराधिक मामला परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 मे दर्ज किया जाता है तो संबधित मामले को मजिस्ट्रेट न्यायालय के द्वारा लोक अदालत को संबधित प्रकरण पर आपस मे पार्टियों द्वारा समझौते हेतु हस्तांरित कर किया जाता है और उस समझौते के अनुसरण मे लोक अदालत द्वारा एक· पंचाट पारित किया जाता है , तो क्या इसे एक सिविल न्यायालय की डिक्री और इस प्रकार निष्पादन योग्य माना जा सकता है - निर्धारित किया गया : अधिनियम की धारा 21 की स्पष्ट भाषा के मद्देनजर , लोक अदालत का प्रत्येक पंचाट सिविल कोर्ट की डिक्री माना जाएगा और इस प्रकार यह उस न्यायालय द्वारा निष्पादन योग्य है - सिविल कोर्ट और क्रिमिनल कोर्ट द्वारा दिए गए संदर्भों के बीच यह अधिनियम भेद नहीं करता है -पंचाट जारी करने की लोक अदालत की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं है लोक अदालत मामलों के संबंध में पक्षों

के बीच हुए समझौते के आधार पर निर्णय पारित करेगी जिसमे विभिन्न न्यायालयों (दीवानी और फौजदारी दोनों) द्वारा संदर्भित, न्यायाधिकरण, पारिवारिक न्यायालय, किराया नियंत्रण न्यायालय, उपभोक्ता निवारण फोरम, मोटर दुर्घटना दावे न्यायाधिकरण और समान प्रकृति के अन्य मंच शामिल है। भले ही कोई मामला आपराधिक न्यायालय द्वारा संदर्भित किया गया हो परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत, द्वारा मान्य प्रावधानों के आधार पर, लोक अदालत द्वारा समझौते पर आधारित पारित किए गए पंचाट को सिविल न्यायालय द्वारा निष्पादन हेतु डिक्री के रूप में माना जाना चाहिए - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881- धारा 138.

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 की धारा 21 की व्याख्या के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न लंबित अपील में विचार हेतु प्रस्तुत हुआ। सवाल यह उठाया गया कि जब कोई आपराधिक मामला परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 मे दर्ज किया जाता है तथा पार्टियों द्वारा

मजिस्ट्रेट न्यायालय से लोक अदालत में संदर्भित मामले का निपटारा करते हुए तथा उक्त समझौता के संबध मे लोक अदालत द्वारा एक पंचाट पारित किया जाता है , तो क्या इसे सिविल न्यायालय की डिक्री और इस प्रकार निष्पादन योग्य माना जा सकता है।

न्यायालय द्वारा अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया गया

1.1.विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 जिले, राज्य और राष्ट्रीय स्तर में विधिक सेवा प्राधिकरणों और विभिन्न समितियाँ को सशक्त बनाता है एवं लंबित एवं पूर्व-मुकदमेबाजी के विवादो के समाधान के लिए लोक अदालतों का आयोजन किया जाता है। यह अधिनियम स्थायी लोक अदालतों के द्वारा सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं से जुड़े विवादो के निपटारे का प्रावधान करता है। अधिनियम के तहत, "विधिक सेवाओं" का एक अर्थ है जिसमें संलग्न न्यायालय के समक्ष कार्यवाही या किसी प्राधिकारी या न्यायाधिकरण के समक्ष प्रतिपादन कार्यवाही इत्यादि के आचरण मे सेवा में समर्पण और विधिक मामलों पर सलाह देना शामिल है। सभी विधिक सेवा प्राधिकरण संस्थानों और समितियाँ के माध्यम से यह अधिनियम सभी तक न्याय की पहुंच को सुनिश्चित करने के लिए एक मशीनरी प्रदान करता है । इन संस्थाओं का संचालन न्यायाधीश और न्यायिक अधिकारी द्वारा किया जाता है। संसद ने अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने का कार्य न्यायपालिका को सौंपा है। [पैरा 7] [454-जी-एच; 455-ए-ई]

1.2. अधिनियम की धारा 21 एक समझ पर आधारित प्रावधान पर विचार करती है, इसलिए, यह एकविधिक कल्पना है कि लोक अदालत द्वारा जारी किया "पंचाट" एक सिविल कोर्ट की डिक्री है। मामले में दूसरी और निचली अदालतों ने यह मानने में गलती की है कि केवल मामला सिविल

न्यायालय द्वारा संदर्भित किया जा सकता हो तभी डिक्री हो और यदि मामला किसी अपराधी द्वारा संदर्भित किया गया हो तो यह केवल आपराधिक अदालत का आदेश होगा, ना कि अधिनियम की धारा 21 के तहत एक डिक्री। सिविल न्यायालय और फौजदारी न्यायालय के द्वारा सन्दर्भ के बीच कोई भेद यह अधिनियम नहीं करता। लोक अदालत द्वारा किसी पंचाट को पारित करने की लोक अदालत की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नही है,पार्टियों के बीच हुए समझौते के आधार पर एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत एक आपराधिक अदालत द्वारा निर्दिष्ट मामले में, और समझने योग्य प्रावधान के आधार पर इसे एक डिक्री के रूप में माना जाना चाहिए जो कि सिविल कोर्ट द्वारा निष्पादन के योग्य हो । [पैरा 8,14] [45,-एफ; 460-जी-एच; 461-ए-बी]

1.3. लोक अदालत के "पंचाट" का अर्थ किसी निर्णय से निकला स्वतंत्र मत या राय बनाने की प्रक्रिया का निर्माण करना नही है। पंचाट का निर्माण महज़ एक प्रशासनिक कार्य है तथा यह निपटान की शर्तों को शामिल करने का या पार्टियों की उपस्थिति में समझौते पर हुई सहमति को लोक अदालत के आदेश के तहत निष्पादन योग्य रूप में लोक अदालत के हस्ताक्षर एवं मुहर से पारित करता है।. [पैरा 15] [461- सी-डी]

1.4. निष्कर्ष में, निम्नलिखित प्रस्ताव का उभरना:

(क)अधिनियम की धारा 21 की स्पष्ट भाषा को देखते हुए, लोक अदालत का प्रत्येक निर्णय किसी सिविल न्यायालय की डिक्री या उस न्यायालय द्वारा निष्पादन योग्य होगा ।

(बी) सिविल कोर्ट और फ़ौजदारी अदालत द्वारा किए गए संदर्भ के बीच अधिनियम ऐसा कोई भेद नहीं करता है ।

(ग) पंचाट जारी करने की लोक अदालत की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं है लोक अदालत मामलों के संबंध में पक्षों के बीच हुए समझौते के आधार पर निर्णय पारित करेगी जिसमे विभिन्न न्यायालयों (दीवानी और फौजदारी दोनों) द्वारा संदर्भित, न्यायाधिकरण, पारिवारिक न्यायालय, किराया नियंत्रण न्यायालय, उपभोक्ता निवारण फोरम, मोटर दुर्घटना दावे न्यायाधिकरण और समान प्रकृति के अन्य मंच शामिल है।

(घ) भले ही कोई मामला किसी आपराधिक अदालत द्वारा भेजा गया हो परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के तहत, और समझने योग्य प्रावधानों के आधार पर, लोक अदालत द्वारा पारित निर्णय के आधार पर समझौते को सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा निष्पादन डिक्री के रूप में माना जाना चाहिए [पैरा 17] [461-एफ-एच; 462- ए-सी

·सुभाष नरसप्पा मंगरुले (एम/एस) और अन्य बनाम सिद्रमप्पा जगदेवप्पा उन्नाद 2009 (3) एमएच.एल.जे. 857 और एम एस आर्मथी

ऑयल इंडस्ट्रीज एवं अन्य बनाम मिस सारधी जिनिंग फ़ैक्टरी एआईआर 2009 मद्रास 180 - अनुमोदित।

पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम जालौर सिंह एवं अन्य। (2008) 2 एससीसी 660: 2008 (1) एससीआर 922; बी.पी. मोइदीन सेवामंदिर और अन्य. वी. एएम. कुट्टी हसन (2009) 2 एससीसी 198: 2008 (17) एससीआर 905 और पी. टी. थॉमस बनाम थॉमस जॉब (2005) 6 एससीसी 478: 2005 (2) पूरक एससीआर 20 -पर भरोसा किया।

भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पा/इटाना शुगर मिल (पी) लिमिटेड और अन्य (2003) 2 एससीसी 111: 2002 (4) सप्ल। एससीआर 517 और एलटीटियानम.और अन्य बनाम चेरिची @ पद्मिनी (2010) 8 एससीसी 612: 2010 (8) एससीआर 1135-संदर्भित।

केस कानून संदर्भ:

2009(3) एमएच.एल.जे.857 स्वीकृत पैरा 10,14

एआईआर 2009 मद्रास 180 स्वीकृत पैरा 11, 14

2002(4)सप्ल. एससीआर 517 स्थानांतरित पैरा 12

2010(8) एससीआर 1135 स्थानांतरित पैरा13

2008(1) एससीआर 922 निर्भर पैरा 15

2008(17) एससीआर 905 निर्भर पैरा 15

2005(2) पूरक एससीआर 20 निर्भर पैरा 16

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या. 10209/2011

उच्च न्यायालय केरल, एर्नाकुलम के निर्णय एवं आदेश दिनांक 24.11.2009 से 2009 के डब्ल्यूपी (सी) संख्या 33013 में ।

प्रशांत पी., प्राची बाजपेयी, एस.के. बालचंद्रन, टी. हरीश कुमार अपीलार्थी की ओर से.

प्रतिवादी की ओर से वी. गिरि (एसी)।

पी. सदाशिवम, जे. द्वारा न्यायालय का निर्णय सुनाया जाता है -

(1) याचिका स्वीकृत

(2) यह अपील एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है कि विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (संक्षेप में 'अधिनियम') धारा 21 की व्याख्या है । विचार के लिए प्रश्न यह है कि जब मजिस्ट्रेट न्यायालय द्वारा लोक अदालत को संदर्भित परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत दायर एक आपराधिक मामला पार्टियों द्वारा तय किया जाता है और समझौते को दर्ज करते हुए एक पंचाट पारित किया जाता है, तो क्या इसे एक सिविल न्यायालय की डिक्री और इस प्रकार निष्पादन योग्य माना जा सकता है?

(3) यह अपील केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम द्वारा 2009 की

रिट याचिका (सी) संख्या 33013 में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 24.11.2009 के खिलाफ निर्देशित है, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिका को खारिज कर दिया था।

(4)संक्षिप्त तथ्य:

(ए) अपीलकर्ता ने सीसी नंबर 2007 का 1216 के आधार पर न्यायिक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट कोर्ट नंबर 1, एर्नाकुलम के समक्ष प्रतिवादी के खिलाफ परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत (संक्षेप में `एनआई एक्ट) शिकायत दर्ज की है। । मजिस्ट्रेट ने पक्षों के बीच समझौते के लिए लोक अदालत में मामले की सुनवाई के लिए उक्त शिकायत को एर्नाकुलम जिलाविधिक सेवा प्राधिकरण को भेज दिया।

(बी) 08.05.2009 को, दोनों पक्ष लोक अदालत के समक्ष उपस्थित हुए और मामले का निपटारा किया गया और उसी दिन एक पंचाट पारित किया गया। पंचाट के अनुसार, रु. 6,000/- में से प्रतिवादी ने उसी दिन 500/- रुपये का भुगतान किया और ,शेष 5,500/- रुपये की राशि 1,100/- रुपये प्रति माह की पांच समान किस्तों में प्रत्येक महीने के 10 वें दिन या उससे पहले जून, 2009 से शुरू होने वाला महीना से भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की। चूक के मामले में, अपीलकर्ता प्रतिवादी से देय शेष राशि एकमुश्त वसूल कर सकता है।

(सी) चूंकि प्रतिवादी ने समझौते के अनुसार किसी भी किस्त का

भुगतान नहीं किया, इसलिए अपीलकर्ता ने प्रिंसिपल मुंसिफ, एर्नाकुलम की अदालत में 2007 के सीसी नंबर 1216 में ईपी नंबर 2009 के तहत निष्पादन याचिका दायर की। पंचाट का निष्पादन. 23.09.2009 को, प्रिंसिपल मुंसिफ जज, एर्नाकुलम ने याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि मजिस्ट्रेट कोर्ट के संदर्भ पर लोक अदालत द्वारा पारित पंचाट को सिविल कोर्ट द्वारा निष्पादन योग्य "डिक्री" के रूप में नहीं माना जा सकता है।

(डी) उक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने केरल उच्च न्यायालय के समक्ष 2009 की रिट याचिका (सी) संख्या 33013 दायर की। उच्च न्यायालय ने दिनांक 24.11.2009 के आदेश द्वारा रिट याचिका खारिज कर दी।

(ई) उक्त आदेश के खिलाफ, अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति के माध्यम से उपरोक्त अपील दायर की।

(5) हालांकि प्रतिवादी ने, इस न्यायालय मे स्वयं पैरवी दी है, उसने व्यक्तिगत रूप से या वकील के माध्यम से मामले को लड़ने का विकल्प नहीं चुना है। अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री प्रशांत पी. और विद्वान वरिष्ठ वकील श्री वी. गिरी को सुना, जिन्होंने हमारे अनुरोध पर, न्याय मित्र के रूप में इस न्यायालय की सहायता की।

(6) उठाए गए प्रश्न का उत्तर जानने के लिए, हमारे सामने रखे गए प्रश्न पर

लागू तथ्यो और कारणों के विवरण और अधिनियम के कुछ प्रावधानों का संदर्भ लेना उपयोगी है।

"विषयो और कारणों का विवरण। - संविधान के अनुच्छेद 39-ए में प्रावधान है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक प्रणाली का संचालन समान अवसर के आधार पर न्याय को बढ़ावा दे, और विशेष रूप से, उपयुक्त तरीके से मुफ्तविधिक सहायता प्रदान करे । कानून या योजनाएं या किसी अन्य तरीके से, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या अन्य विकलांगताओं के कारण किसी भी नागरिक को न्याय हासिल करने के अवसरों से वंचित नहीं किया जाए।'

2. मुफ्तविधिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से, सरकार ने 26 सितंबर, 1980 के संकल्प द्वारा श्री न्यायमूर्ति पीएन भगवती (तब वह थे) की अध्यक्षता में "विधिक सहायता योजनाओं को लागू करने के लिए समिति" (सीआईएलएएस) नियुक्त की थी । जिसका कार्य सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में समान आधार पर विधिक सहायता कार्यक्रमों की निगरानी और कार्यान्वयन करना सीआईएलएएस ने पूरे देश में लागूविधिक सहायता कार्यक्रम के लिए एक मॉडल योजना विकसित की है जिसके द्वारा राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में कईविधिक सहायता और सलाह बोर्ड स्थापित किए गए हैं। सीआईएलएएस को पूरी तरह से केंद्र सरकार के अनुदान से वित्त पोषित किया जाता है। तदनुसार, सरकारविधिक सहायता

के कार्यक्रम को लेकर चिंतित है क्योंकि यह एक संवैधानिक अधिदेश का कार्यान्वयन है। लेकिन सीआईएलएएस के कामकाज की समीक्षा करने पर कुछ कमियां सामने आई हैं। इसलिए, यह महसूस किया गया कि राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तरों पर वैधानिकविधिक सेवा प्राधिकरणों का गठन करना वांछनीय होगा ताकिविधिक सहायता कार्यक्रमों की प्रभावी निगरानी प्रदान की जा सके। विधेयक ऐसे प्राधिकरणों की संरचना और केंद्र सरकार और राज्य सरकारों से अनुदान के माध्यम से इन प्राधिकरणों के वित्तपोषण का प्रावधान करता है।कानूनी सहायता योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन की निगरानी के लिए राष्ट्रीय समिति और राज्य समितियों को भी शक्ति दी गई है ।

पिछले कुछ समय से देश में विभिन्न स्थानों पर बड़ी संख्या में मामलों को शीघ्रता से और कम लागत में पक्षकारों के बीच मध्यस्थता और समझौते की प्रक्रिया के माध्यम से निपटाने के लिए लोक अदालतों का गठन किया जा रहा है। लोक अदालतों की संस्था वर्तमान में अपने निर्णयों के लिए किसी वैधानिक समर्थन के बिना एक स्वैच्छिक और सुलह एजेंसी के रूप में कार्य कर रही है। यह न्याय प्रशासन की त्वरित प्रणाली प्रदान करने में बहुत लोकप्रिय साबित हुआ है। इसकी बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए इस संस्था और लोक अदालतों द्वारा दिए जाने वाले पंचाट को वैधानिक समर्थन प्रदान करने की मांग की गई है।

ऐसा महसूस किया गया है कि इस तरह के वैधानिक समर्थन से न

केवल नियमित अदालतों में काम के बकाया का बोझ कम होगा, बल्कि गरीबों और जरूरतमंदों के दरवाजे तक न्याय पहुंचेगा और न्याय त्वरित और कम खर्चीला हो जाएगा।"

"2.(ए) "न्यायालय" का अर्थ एक सिविल, आपराधिक या राजस्व न्यायालय है और इसमें न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्यों का प्रयोग करने के लिए किसी भी समय लागू कानून के तहत गठित कोई न्यायाधिकरण या कोई अन्य प्राधिकरण शामिल है;"

"2(सी)"कानूनी सेवा" में किसी भी न्यायालय या अन्य प्राधिकरण या न्यायाधिकरण के समक्ष किसी मामले या अन्यविधिक कार्यवाही के संचालन में कोई सेवा प्रदान करना और किसीविधिक मामले पर सलाह देना शामिल है;"

"2(डी) "लोक अदालत" का अर्थ अध्याय VI के तहत निर्धारित लोक अदालत है।"

"21. लोक अदालत का पंचाट.-

(1) लोक अदालत का प्रत्येक पंचाट सिविल न्यायालय का डिक्री या, जैसा भी मामला हो, किसी अन्य न्यायालय का आदेश माना जाएगा और जहां समाधान या समझौता हुआ हो लोक अदालत द्वारा धारा 20 की उप-धारा (1) के तहत संदर्भित मामले में ऐसे मामले में भुगतान की गई कोर्ट-फी, कोर्ट-फी अधिनियम, 1870 (7 का 1870) के तहत प्रदान किए गए

तरीके से वापस की जाएगी।

(2) लोक अदालत द्वारा दिया गया प्रत्येक निर्णय अंतिम होगा और विवाद के सभी पक्षों पर बाध्यकारी होगा, और पंचाट के खिलाफ किसी भी न्यायालय में कोई अपील नहीं की जाएगी।

(7) समाज के गरीब और वंचित रहने वाले सदस्यों को मुफ्तविधिक सहायता अब उन्हें नागरिकों और आर्थिक निवार्ता के रूप में अपने अधिकारों और हितों को आगे बढ़ाने के लिए तथा विधिक शक्ति का उपयोग करने के लिए सशक्त बनाने के एक उपकरण के रूप में देखी जाती है। संसद ने मुफ्त विधिक सहायता प्रदान करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 39-ए को प्रभावी बनाने के लिए विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 अधिनियमित किया, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके किविधिक प्रणाली समान अवसर के आधार पर न्याय को बढ़ावा दे।

मुफ्तविधिक सेवाओं के हकदार लोग अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्य, महिलाएं, बच्चे, विकलांग व्यक्ति, जातीय हिंसा के शिकार, औद्योगिक कामगार, हिरासत में रखे गए व्यक्ति और जिनकी आय सरकार द्वारा निर्धारित स्तर से अधिक नहीं है। (वर्तमान में अधिकांश राज्यों में यह 1 लाख रुपये प्रति वर्ष है)। यह अधिनियम जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर विधिक सेवा प्राधिकरणों और विभिन्न समितियों को लंबित और मुकदमेबाजी विवादों को हल करने के लिए लोक अदालत निर्धारित

करने का अधिकार देता है। यह सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं से जुड़े विवादों को निपटाने के लिए स्थायी लोक अदालतों का प्रावधान करता है। अधिनियम के तहत, "विधिक सेवाओं" का एक अर्थ है जिसमें किसी भी प्राधिकरण, न्यायाधिकरण आदि के समक्ष किसी भी अदालत से जुड़ी कार्यवाही या कार्यवाही के संचालन में सेवा प्रदान करना और विधिक मामलों पर सलाह देना शामिल है। विधिक साक्षरता को बढ़ावा देना और विधिक जागरूकता का संचालन करना कार्यक्रम विधिक सेवा संस्थानों के कार्य हैं। अधिनियम विधिक सेवा प्राधिकरणों और समितियों के संस्थानों के माध्यम से सभी के लिए न्याय तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए एक मशीनरी प्रदान करता है। इन संस्थानों को न्यायाधीशों और न्यायिक अधिकारियों द्वारा संचालित किया जाता है। संसद ने इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने का यह कार्य न्यायपालिका को सौंपा है ।

(8) अधिनियम की धारा 21, एक मान्य प्रावधान पर विचार करती है जिसका हमने ऊपर बताया है, इसलिए, यह एक विधिक कल्पना है कि लोक अदालत का "पंचाट" एक सिविल कोर्ट का डिक्री है ।मौजूदा मामले में, उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए रखा गया प्रश्न यह था कि "जब मजिस्ट्रेट द्वारा लोक अदालत में भेजे गए एक आपराधिक मामले को पार्टियों द्वारा निपटाया जाता है और समझौते को दर्ज करते हुए पंचाट पारित किया जाता है, तो क्या इसे इस प्रकार उस न्यायालय द्वारा निष्पादन योग्य माना जा सकता है? "अधिनियम की धारा 21 प्रासंगिक

प्रावधानों,पर प्रकाश डालने के बाद, उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि लोक अदालत द्वारा पारित प्रत्येक पंचाट को एक सिविल अदालत का डिक्री माना जाना चाहिए और उस अदालत द्वारा निष्पादन योग्य होना चाहिए। दुर्भाग्य से, उक्त तर्क उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया ।

दूसरी ओर, उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि जब कोई आपराधिक मामला लोक अदालत में भेजा जाता है और लोक अदालत में इसका निपटारा हो जाता है, तो पारित पंचाट को केवल उस आपराधिक अदालत के आदेश के रूप में माना जाना चाहिए और इसे सिविल कोर्ट की डिक्री के रूप में निष्पादित नहीं किया जा सकता है। इतना कहने के बाद, उच्च न्यायालय ने अंततः निष्कर्ष निकाला कि "आपराधिक अदालत द्वारा एक आपराधिक मामले के संदर्भ पर लोक अदालत द्वारा पारित एक पंचाट, जैसा कि पहले ही निष्कर्ष निकाला जा चुका है, को केवल आपराधिक अदालत द्वारा एक आदेश के रूप में माना जा सकता है और यह किसी अदालत द्वारा पारित डिक्री नहीं है। " सिविल कोर्ट" और प्रिंसिपल मुंसिफ के आदेश की पुष्टि की, जिन्होंने आपराधिक अदालत द्वारा एक शिकायत के संदर्भ पर लोक अदालत द्वारा पारित पंचाट को निष्पादित करने के याचिकाकर्ता के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। यहां दिए गए कारणों के अलावा, तथ्य और कारणों के विवरण, 'न्यायालय' की परिभाषा, 'कानूनी सेवा' के साथ-साथ अधिनियम की धारा 21 का अध्ययन करने पर, हमारा

विचार है कि केरल उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई व्याख्या का आक्षेपित आदेश त्रुटिपूर्ण है।

(9) इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों के कुछ निर्णयों का उल्लेख करना उपयोगी है जिनका वर्तमान मुद्दे पर प्रभाव है।

(10) 2009 में रिपोर्ट किए गए सुभाष नरसप्पा मंगरूले (एम/एस) और अन्य बनाम सिद्रमप्पा जगदेवप्पा उन्नाद में (3) एमएच.एलजे 857, बॉम्बे उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने एक समान प्रश्न पर विचार किया। उस मामले में, 22.06.2001 को, प्रतिवादी ने एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, अक्कलकोट की अदालत में एससीसी संख्या 923/2001 के तहत एक आपराधिक शिकायत दर्ज की। बाद में उक्त आपराधिक मामला लोक अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया. लोक अदालत के समक्ष मामले का समझौता किया गया और तदनुसार 4 लाख रुपये का पंचाट पारित किया गया। उसमें प्रतिवादी ने आपराधिक मामले में लोक अदालत द्वारा पारित पंचाट के निष्पादन के लिए सीजेजेडी की अदालत में 2006 की डार्कहास्ट कार्यवाही संख्या 17 दायर की क्योंकि समझौता आदेश / पंचाट का कोई अनुपालन नहीं हुआ था।विद्वान सीजेजेडी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'संहिता') के आदेश XXVII नियम 22 के तहत एक नोटिस जारी किया।

इसमें याचिकाकर्ता ने यह कहते हुए आपत्ति जताई कि आवेदन की कार्यवाही चलने योग्य नहीं है क्योंकि फैसला आपराधिक मामले में पारित किया गया है। आदेश दिनांक 18.07.2007 द्वारा, विद्वान सिविल न्यायाधीश, (जूनियर प्रभाग) ने आपत्ति का निस्तारण कर निर्णय एवं आदेश के अनुसार निष्पादन की कार्यवाही आगे बढ़ाने का निर्देश दिया। इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण दायर किया। धारा 20 और अधिनियम के अन्य प्रावधानों का अवलोकन करने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला है: -

"16. पार्टियों को पूरी तरह से पता था कि अधिनियम के तहत, जिलाविधिक सेवा प्राधिकरण चेक बाउंस मामलों के संबंध में पूर्व-मुकदमेबाजी लोक अदालत निर्धारित करने की संभावना तलाश सकता है। ऐसे मामलों में समझौते को पंचाट को बल देने वाले एक डिक्री के रूप में माना जाएगा। उपरोक्त वैधानिक प्रावधानों के मद्देनजर निष्पादन के संबंध में उठाए गए सभी आपत्तियों को खारिज कर दिया गया है। लोक अदालत में मामला निपटाने के बाद और अब 3 साल से अधिक समय के बाद ऐसी याचिका उठाना अस्थिर है। लोक अदालत से पंचाट प्राप्त करने के बाद ,पार्टी को इससे पीछे हटने की अनुमति नहीं है। यह अंततः पार्टियों के बीच विवाद को अंतिम रूप देता है और सभी को बाध्य करता है। इसलिए, इस संबंध में आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

17. एक बार जब पार्टियों ने लोक अदालत के समक्ष समझौता कर लिया, और उस समय लोक अदालत द्वारा किसी आर्थिक क्षेत्राधिकार का कोई प्रश्न नहीं उठाया गया या उस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, एक बार पंचाट पारित हो जाने के बाद, यह सीपीसी के तहत निष्पादन योग्य है..."

(11) मेसर्स वलारमथी ऑयल इंडस्ट्रीज एवं अन्य में। बनाम मैसर्स सारधी जिनिंग फैक्ट्री, एआईआर 2009 मद्रास 180, स्वीकृत तथ्य यह थे कि 2006 की सीसी संख्या 308 को प्रतिवादी द्वारा दी गई शिकायत पर विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट संख्या ।, सलेम द्वारा फाइल पर लिया गया था कि चेक फर्म के भागीदार के रूप में पहले याचिकाकर्ता की ओर से दूसरे याचिकाकर्ता द्वारा जारी किया गया था, हालांकि, अपर्याप्त धन के कारण बैंक द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया था।

प्रतिवादी के अनुसार याचिकाकर्ता को विधिक नोटिस जारी करने के बाद याचिकाकर्ताओं के खिलाफ एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत दी गई थी। आपराधिक मामले के लंबित रहने के दौरान दोनों पक्षों के अनुरोध पर मामले को निपटारे के लिए लोक अदालत में भेजा

गया था । दोनों पक्ष लोक अदालत के समक्ष उपस्थित थे और फैसले के अनुसार, वे समझौते के लिए सहमत हुए और तदनुसार, याचिकाकर्ता/अभियुक्त 03.09.2007 को या उससे पहले प्रतिवादी को 3,75,000/- रु.रुपये का भुगतान करने पर सहमत हुए। .इस पर प्रतिवादी/शिकायतकर्ता, याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों और उनके संबंधित वकील द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे ।दोनों पक्षों के बीच हुए समझौते के मद्देनजर देय राशि 3,75,000/-रुपये तय की गई । दावे की पूर्ण समाप्ति के लिए और याचिकाकर्ता 03.09.2007 को या उससे पहले उपरोक्त राशि का भुगतान करने के लिए सहमत हुए और तदनुसार, पंचाट पारित किया गया और आगे के आदेशों के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट न्यायालय के समक्ष रखा गया । जब उक्त पंचाट को दिनांक 17.10.2007 के निर्णय द्वारा विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष रखा गया, तो निर्णय के आधार पर यह माना गया कि याचिकाकर्ताओं को एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत दोषी ठहराया गया था, तदनुसार, एक वर्ष के साधारण कारावास की सजा दी गई और निर्देश दिया गया इसमें याचिकाकर्ताओं को प्रतिवादी को मुआवजे के रूप में 3,75,000/- रुपये की राशि का भुगतान करना होगा। जिससे व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों ने सत्र न्यायाधीश, सेलम के समक्ष 2007 के सीएस नंबर 167 में अपील की। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने कारावास की सजा को 16.12.2007 तक निलंबित करते हुए याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों को ट्रायल कोर्ट के समक्ष 3,75,000/-रुपये की

राशि जमा करने का निर्देश दिया और स्पष्ट किया कि राशि जमा करने में विफलता के मामले में, सजा के निलंबन का आदेश स्वचालित रूप से रद्द हो जाएगा और याचिकाकर्ताओं को रुपये के लिए एक बांड निष्पादित करने का भी निर्देश दिया गया था। ट्रायल कोर्ट की संतुष्टि के लिए प्रत्येक याचिकाकर्ता को समान राशि के दो जमानतदारों के साथ 10,000/- रु जमा कराने का भी निर्देश दिया। इससे व्यथित होकर अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण मामला प्रस्तुत किया । उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि अधिनियम की धारा 21 के अनुसार लोक अदालत के प्रत्येक फैसले को सिविल कोर्ट का डिक्री माना जाएगा और इसलिए, लोक अदालत द्वारा पारित फैसले के बाद प्रतिवादी/शिकायतकर्ता सिविल कोर्ट के डिक्री की तरह पंचाट को निष्पादित करने का हकदार था, हालांकि, तत्काल मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपने फैसले से याचिकाकर्ताओं को एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत दोषी पाया और उन्हें दोषी ठहराया औरएक वर्ष के लिए साधारण कारावास भुगतना होगा और 3,75,000/- रुपये का मुआवजा देना होगा की सजा सुनाई ।

उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या लोक अदालत में निर्णय पारित होने के बाद मजिस्ट्रेट एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों को दोषी ठहरा सकता है। विद्वान एकल

न्यायाधीश ने अधिनियम की धारा 21(1) को लागू करने और विद्वान मजिस्ट्रेट के आदेश के बाद निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला है: -

"13. यदि लोक अदालत में कोई समझौता नहीं हुआ होता, तो विद्वान मजिस्ट्रेट मुकदमे को आगे बढ़ा सकता था और अपना फैसला सुना सकता था, जिसके लिए कोई रोक नहीं है। वर्तमान मामले में, जैसा कि दोनों विद्वान वकीलों ने स्वीकार किया है, जो कि दोनो पक्षों के बीच बनी सहमति के आधार पर लोक अदालत में एक पंचाट पारित किया गया। उस पंचाट के निर्णय के अनुसार, याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों को 03.09.2007 को या उससे पहले प्रतिवादी/शिकायतकर्ता को 3,75,000/- रुपये का भुगतान करना था। जैसा कि यह लोक अदालत द्वारा दिया गया एक पंचाट है, यह आपराधिक पुनरीक्षण के लिए पार्टियों पर अंतिम और बाध्यकारी है और जैसा कि अधिनियम की धारा 21 (2) के तहत विचार किया गया है पंचाट के खिलाफ किसी भी अदालत में कोई अपील नहीं की जाएगी।

14. ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता उचित अदालत के समक्ष निष्पादन याचिका दायर कर सकते थे, जिसमें ब्याज और लागत के साथ पंचाट राशि का भुगतान करने की मांग की जा सकती थी ।ऐसी परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि लोक अदालत द्वारा पारित फैसले के बाद मामले का फैसला करने के लिए विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, परक्राम्य

लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत आरोपी को दोषी ठहराने के लिए प्राधिकृत अधिकारी बन गया, इसलिए, विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश भी कानून में उचित नहीं है, हालांकि, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों ने लोक अदालत में पंचाट पारित करने की सहमति देने और पंचाट राशि रुपये का भुगतान करने पर भी सहमति व्यक्त, के बाद 03.09.2007 को या उससे पहले 3,75,000/- प्रतिवादी को लोक अदालत के समक्ष दिए गए अपने वचन का पालन नहीं किया है, जिसे उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

हालाँकि, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम (अधिनियम, 39/1987) की धारा 20(1)(i)(b), 20(1)(ii) के तहत पारित लोक अदालत के फैसले के मद्देनजर, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।, क्योंकि न्यायिक मजिस्ट्रेट कार्यात्मक अधिकारी बन गया और अधिनियम की धारा 21 के अनुसार, पंचाट कानून की नजर में एक निष्पादन योग्य डिक्री है।"

इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह स्पष्ट किया कि लोक अदालत द्वारा पारित पंचाट के अनुसार, प्रतिवादी/शिकायतकर्ता पंचाट कानून द्वारा ज्ञात प्रक्रिया के अनुसार, बाद के ब्याज और लागत के साथ 3,75,000/- की प्रतिपूर्ति राशि रुपये प्राप्त करने के लिए उचित अदालत के समक्ष निष्पादन याचिका दायर करने के लिए

स्वतंत्र है।।

(12) भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना शुगर मिल (पी) लिमिटेड और अन्य, (2003) 2 एससीसी 111 में, यह निर्धारित किया गया है कि क़ानून में एक विधिक कल्पना बनाने का आशय और उद्देश्य सर्वविदित है और जब एक विधिक कल्पना बनायी गयी होती है तो उसे अपना पूरा प्रभाव देना होता है ।

(13) इत्तियानम और अन्य बनाम चेरिची @ पद्मिनी (2010) 8 एससीसी 612 में, यह माना गया कि जब विधायिका एक विधिक कल्पना बनाने के लिए एक समझने योग्य प्रावधान का उपयोग करती है, तो इसका उपयोग हमेशा एक तथ्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

(14) अधिनियम के तथ्यो और कारणों के विवरण में साक्ष्य के रूप में वैधानिक समर्थन न केवल नियमित अदालतों में काम के बकाया के बोझ को कम करेगा, बल्कि गरीबों और जरूरतमंदों के दरवाजे तक न्याय पहुंचाएगा तथा त्वरित और कम खर्चीला न्याय दिलाएगा। मौजूदा मामले में, निचली अदालतों ने यह मानने में गलती की है कि केवल यदि मामला ऐसा है जिसे सिविल अदालत ने संदर्भित किया है तो यह डिक्री हो सकता है और यदि मामला आपराधिक अदालत द्वारा संदर्भित किया गया है तो यह केवल आपराधिक न्यायालय का आदेश होगा ना कि अधिनियम की धारा 21के तहत डिक्री। अधिनियम सिविल अदालत और आपराधिक

अदालत द्वारा दिए गए संदर्भ के बीच ऐसा कोई अंतर नहीं करता है।

एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत आपराधिक अदालत द्वारा संदर्भित मामले में पक्षों के बीच हुए समझौते के आधार पर पंचाट पारित करने की लोक अदालत की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं है, और समझने योग्य प्रावधान के आधार पर यह होना ही चाहिए। इसे सिविल न्यायालय द्वारा निष्पादित करने में सक्षम डिक्री के रूप में माना जाता है। इस संबंध में, सुभाष नरसप्पा मंगरूले (सुप्रा) और मेसर्स वलारमथी ऑयल इंडस्ट्रीज (सुप्रा) में लिया गया दृष्टिकोण इस तर्क का समर्थन करता है और हम इसे पूरी तरह से स्वीकार करते हैं।

(15) पंजाब राज्य और अन्य बनाम जालौर सिंह और अन्य (2008) 2 एससीसी 660 में इस न्यायालय के फैसले को संदर्भित करना उपयोगी है । उस निर्णय का अनुपात यह था कि लोक अदालत के "पंचाट" का अर्थ किसी भी निर्णय लेने की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त कोई स्वतंत्र निर्णय या राय नहीं है। पंचाट देना लोक अदालत की उपस्थिति में पक्षों द्वारा सहमत निपटान या समझौते की शर्तों को लोक अदालत के हस्ताक्षर और मुहर के तहत एक निष्पादन योग्य आदेश के रूप में शामिल करने का एक प्रशासनिक कार्य मात्र है। इस फैसले का अनुकरण बीपी मोइदीन सेवामंदिर और अन्य बनाम एएम कुट्टी हसन (2009) 2 एससीसी 198 में पालन किया गया।

(16) पीटी थॉमस बनाम थॉमस जॉब, (2005) 6 एससीसी 478, लोक अदालत में, इसके लाभ, पंचाट और इसकी अंतिमता पर व्यापक रूप से चर्चा की गई है।

(17) उपरोक्त चर्चा से निम्नलिखित प्रस्ताव सामने आते हैं:

(1) अधिनियम की धारा 21 की स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए , लोक अदालत के प्रत्येक पंचाट को एक सिविल अदालत का डिक्री माना जाएगा और इस तरह यह उस न्यायालय द्वारा निष्पादन योग्य है।

(2) अधिनियम सिविल अदालत और आपराधिक अदालत द्वारा दिए गए संदर्भ के बीच ऐसा कोई अंतर नहीं करता है।

(3) विभिन्न न्यायालयों (सिविल और आपराधिक दोनों), ट्रिब्यूनल, पारिवारिक न्यायालय, किराया नियंत्रण न्यायालय,

उपभोक्ता निवारण फोरम, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण और समान प्रकृति के अन्य फोरम द्वारा संदर्भित मामलों के संबंध में पक्षों के बीच हुए समझौते के आधार पर पंचाट पारित करने की लोक अदालत की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

(4) भले ही किसी मामले को परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत और समझने योग्य प्रावधानों के आधार पर एक आपराधिक अदालत द्वारा संदर्भित किया गया हो, लोक अदालत द्वारा समझौते के आधार पर पारित किए गए पंचाट को सिविल न्यायालय द्वारा

निष्पादन की गई एक डिक्री के रूप में माना जाना चाहिए ।.

(18) उपरोक्त चर्चा और अंतिम निष्कर्ष के मद्देनजर, हम 2007 के सीसी नंबर 1216 में 2009 की एक अनगिनत निष्पादन याचिका में प्रधान मुंसिफ न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.09.2009 और उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 24.11.2009 को रद्द करते हैं। रिट याचिका (सी) संख्या 33013 ऑफ़ 2009 में नतीजतन, हम निष्पादन अदालत को निष्पादन याचिका बहाल करने और कानून के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश देते हैं।

(19) इस मामले से अलग होने से पहले, हम विद्वान न्याय मित्र द्वारा प्रदान की गई बहुमूल्य सहायता के लिए अपनी गहरी सराहना दर्ज करना चाहेंगे।

(20) सिविल अपील की अनुमति है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

.

अपील अनुमत

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **देवेंद्र कुमार (आर.जे.एस.),वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश एवं अति. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, दूदू, जिला जयपुर** द्वारा किया गया है।

अस्वीकारण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अग्रेंजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।